बनास जन

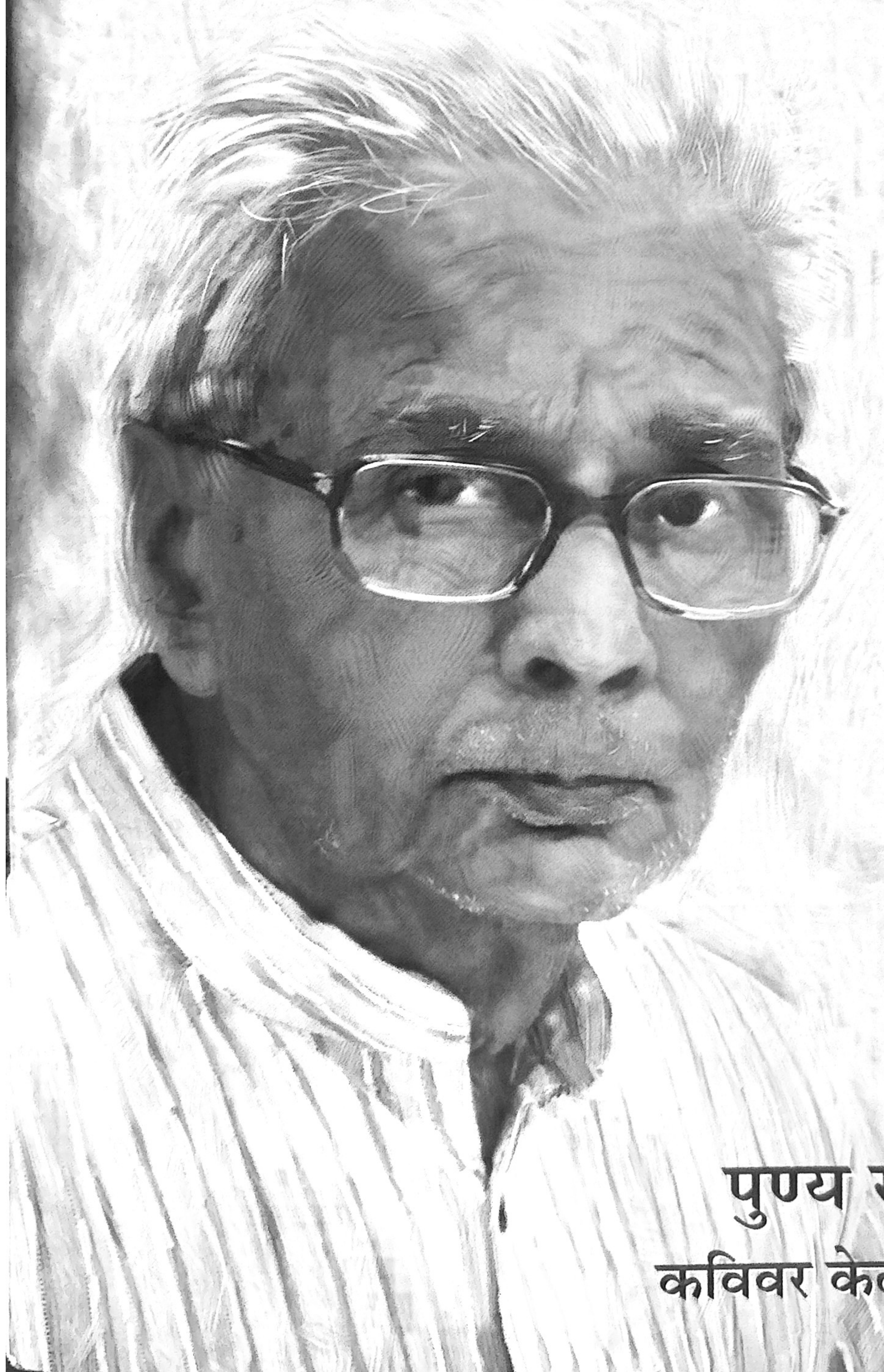

पुण्य स्मरण

कविवर केदारनाथ सिंह

अव्यावसायिक
अप्रैल, 2018 अंक 30
अगस्त, 2018 में प्रकाशित वर्ष 10

परामर्श : प्रो. नवलकिशोर
प्रो. काशीनाथ सिंह
डॉ. के. सी. शर्मा
डॉ. स्वयं प्रकाश
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

संपादक : पल्लव

सहयोग : गणपत तेली, भँवरलाल मीणा

लेजरटाइप सेटिंग : सुभाष कश्यप, दिल्ली मो. : +91–9911163286

सहयोग राशि : 25 रुपये (यह अंक) - डाक द्वारा मंगवाने पर - 50 रुपये
50 रुपये (संस्थागत) - डाक द्वारा मंगवाने पर - 75 रुपये
300 रुपये - वार्षिक सहयोग (व्यक्तिगत)
600 रुपये - वार्षिक सहयोग (संस्थागत)
5000 रुपये - आजीवन (व्यक्तिगत)
The Draft/Cheque may please be made in favour of 'Banaas Jan'
Our A/C details : SBI C/A No.61159024776
IFSC Code : SBIN 0032036
Branch name : State Bank of India, D L DAV Model School, B N Block
Shalimar Bagh, New Delhi-110088

आवरण : अशोक सिद्धार्थ, लखनऊ

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेन्ट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
व्हाट्सअप : +91–8130072004 (केवल संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmail.com
वेबसाइट : www.notnul.com

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
सम्पादन एवं सह सम्पादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेन्ट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और दिव्या आफसेट प्रिन्टर्स, बी-1422, न्यू अशोक नगर, मयूर विहार, दिल्ली-110096 से मुद्रित।

BANAAS JAN
A Collection of Literature
Language : Hindi

ISSN 2231–6558

अनुक्रम

अपनी बात		
बिना किसी सूचना बनारस को अचानक देखो	राजीव सिंह	6
ज़र्रा-ज़र्रा है उनका पता	सुबोध कुमार	9
पत्र	बच्चन सिंह	13
और यहीं से शुरू होती है मेरी अगली यात्रा	निरंजन सहाय	16
बाँचना तद्भव का दुःख अर्थात् होना केदारनाथ सिंह	जितेन्द्र श्रीवास्तव	29
अभी बहुत कुछ है अगर बची है दूब	वीरेन्द्र मोहन	38
मेरी भाषा के लोग, मेरी सड़क के लोग हैं	श्रीराम त्रिपाठी	47
'तालस्ताय और साइकिल' को पढ़ते हुए	कुँवर नारायण	59
व्यक्ति से मनुष्य तक : केदारनाथ सिंह	कामेश्वर प्रसाद सिंह	63

और यहीं से शुरू होती है मेरी अगली यात्रा

हिंदी क्रियाओं के अपार संसार में सबसे खतरनाक क्रिया 'जाना' की शिनाख्त करने वाले आजाद भारत के अत्यंत लोकप्रिय हिंदी कवि केदारनाथ सिंह नहीं रहे। पर केदार जी जैसे कवि जाते कहाँ है, वह तो अपने पाठकों के आत्मीय संसार का सर्वाधिक विश्वसनीय सहचर बन सार्वदेशिक और सार्वकालिक बन जाते हैं। निराला और अज्ञेय की तरह वे हिंदी के ऐसे कवि के रूप में याद किए जाएँगे जिनके निधन को भारतीय कविता ने अपूरणीय क्षति माना। उनके प्रिय विद्यार्थी और हमारे वरिष्ठ सुबोध कुमार ने बताया निगमबोध पर जब केदार जी की अंत्येष्टि हो रही थी, तब वहाँ केदार जी को चाहने वाले इतनी बड़ी तादाद में आए थे, जितना किसी अन्य कवि के निधन पर नहीं। निधन के कुछ ही महीने पहले एक साक्षात्कार में केदार जी ने एक बेहद रोचक संस्मरण का जिक्र किया था, उन्होंने कहा, ''अभी मेरी कविताओं का संकलन फ्रेंच भाषा में छपा। पेरिस में उसका लोकार्पण हुआ। मुझे भी बुलाया गया। जिस प्रकाशन ने यह किताब छापी है उसने मुझे इतनी रॉयल्टी दी जितनी आज तक मुझे नहीं मिली। यह रकम मेरे अब तक के जीवन भर की रॉयल्टी से भी अधिक है। मैं उस कैफे में गया जहाँ ज्याँ पाल सार्त्र बैठते थे। वहाँ उनकी कुर्सी पर टिकट कटाकर बैठने के लिए लंबी लाइन लगी हुई थी। जब रेस्तराँ मालिक को मेरी अनुवादिका ने मेरे बारे में बताया तो वह दौड़ता हुआ आया और मेरे बारे में घोषणा करके मुझे बिना लाइन सार्त्र की कुर्सी पर बैठाया। मैं बता नहीं सकता कि उस क्षण मुझे कितनी खुशी हुई। क्या हम भारत में ऐसा कुछ नहीं कर सकते? फ्रांस दुनिया का अकेला देश है जहाँ कला-साहित्य-संस्कृति-सिनेमा को सबसे अधिक महत्त्व मिलता है।'' भारत में फ्रांस की झलक नजर आए, यह कोरी कल्पना की बात होगी क्या? कविता को उपेक्षित समझने वाली समकालीन उत्तर आधुनिक भारतीय सामाजिक संरचना में लोकप्रियता के लिहाज से केदार जी चंद अपवादों में एक हैं। बदलते भारत की तस्वीर का जब हम आकलन करते हैं, तब उसकी एक बानगी एफएम रेडियो, फिल्मों और चैनलों से भी पाते हैं, जहाँ बेहतरीन साहित्य के लिए जगह नामुमकिन नहीं तो मुश्किल जरूर है। ऐसे में आप रेडियो मिर्ची पर आरजे सायमा से केदार जी की कविता का पाठ, रेड एफएम पर नीलेश मिश्रा की बेहतरीन आवाज में केदार जी की मातृभाषा कविता सुनें या अभिनेता पंकज त्रिपाठी को न्यूज 18 के बेस्ट सपोर्टिंग एक्टर का पुरस्कार ग्रहण करते हुए उसे केदार जी को समर्पित करते हुए पाते हैं, या यूट्यूब पर अमरीका में जन्मे, ऑस्ट्रेलिया में बसे प्रो. इयान वुलफोर्ड से केदार जी की कविता का पाठ करते हुए पाते हैं तो विस्मय में पड़ जाते हैं। अन्य शब्दों में, केदारनाथ सिंह भारतीय कविता के उन सौभाग्यशाली शख्सियतों में शुमार किए जाएँगे जिन्हें अपार लोकप्रियता मिली। उनके चाहने वालों ने जिस शिद्दत से उनकी रचनात्मक उपस्थिति को महसूस किया उसकी सुवास का ही आलम है कि एक और प्रसंग में उनका बार-बार उल्लेख किया जाता है। वह यह कि निराला की तरह केदार जी ने भी बाद की अनेक पीढ़ियों को काव्य विषय, भाषाभंगिमाओं और तकनीक के स्तर पर प्रभावित किया और उनका असर काव्य परिदृश्य पर पडा। वे हिंदी कविता के ऐसे विलक्षण कवि के रूप में सहज ही समादृत हैं, जिनके काव्यवृत्त में अनेक पीढियों ने रचबस कर अपने काव्यलोक की भूमि को सिरजा। ऐसे हिंदी

निरंजन सहाय : सपुरिचित आलोचक
प्रोफेसर, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
मो. : 91–9451777960 ईमेल : dr.niranjan.sahay@gmail.com

कवियों की फेहरिश्त काफी लंबी हो सकती है।

उनके कुल आठ काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। उनकी काव्ययात्रा का उत्स एक अनथक खोज से शुरू हुआ, उन्हीं के शब्दों का इस्तेमाल करें तो 'अजन्मे की खोज'। तीसरा सप्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा, 'हर लंबे दिन के बाद जब लौटकर आता हूँ तो कुछ देर तक कमरे के दानव से लड़ना पड़ता है। पराजित कोई नहीं होता। पर समझौता भी कोई नहीं करता। शायद हम दोनों को विश्वास है कि हमारे बीच एक तीसरा भी है जो अजन्मा है। कौन जाने यह संघर्ष उसी के लिए हो।' उनकी काव्ययात्रा को इन पंक्तियों से रोशन करें तो हम पाते हैं, वे ताउम्र बेहतर की तलाश में रहे। दो शब्द उन्हें बहुत प्रिय थे—'धारोष्ण' और 'पुनर्नवा'। यह उनके काव्य व्यक्तित्व की भी धुरी है। यह सही है कि उनकी आरंभिक छवि रोमांटिक कवि की रही, बाद में वे एक ऐसे कवि के रूप में जाने गए, जो जनवादी कवि की अग्रिम पंक्ति में तो शामिल हुए ही रूपवादियों के बीच भी समादृत हुए। प्रगतिशील काव्यधारा की त्रिमूर्ति नागार्जुन, त्रिलोचन एवं केदारनाथ अग्रवाल के बाद केदारनाथ सिंह सबसे महत्त्वपूर्ण जनवादी कवि के रूप में माने गए। वे अनेक अर्थों में 'समग्र सौंदर्यलोक' के सर्जक थे। जैसे—उनका अनुभव क्षेत्र काफी विकसित था, वे एक साथ गाँव और शहर पर लिखने वाले 'सच्ची भारतीय कविता का खाका निर्मित करते थे, वे रूप या तंत्र के स्तर पर बिंब और विचार का विस्मयजनक सृजनात्मक संतुलन प्रस्तुत करते थे, जिसमें समय की तीखी और बेलौस सच्चाई कलात्मक रूप में अभिव्यक्त होती थी। वे कल्पना का रचनात्मक प्रयोग करते थे, जिसमें अमूर्त की कुलाँचे नहीं, परिवेश की जटिलता के विभिन्न अनुभव-संदर्भ प्रकट होते थे। 'एक क्लासिक गरिमा की उपस्थिति, उनकी कविताओं को 'विभिन्न आंदोलनों और वादों के तुमुल कोलाहल' में भी प्रासंगिक और अपरिहार्य काव्य-आस्वाद में रूपांतरित कराती थी। उनका काव्यलोक केवल कलात्मक अस्वा नहीं था, बल्कि वहाँ कविता का 'कमिटमेंट' या कविता की बुनियादी चिंता समग्रता के साथ ध्वनित थी।

अपने अंतिम संग्रह 'सृष्टि पर पहरा' में अनुभवों और काव्य तकनीक की नव्यता किन रूपों में नजर आई! इसे देखना-परखना एक मानीखेज और आत्मीय अनुभव है। विचार और सौंदर्य कैसे काव्यबोध में रूपांतरित होता है, यह काव्यलोक के फलक और अनुभव के कलात्मक रूपांतरण पर निर्भर करता है। अपने समय को सिरजने की जिद, अमानवीयता के खिलाफ सजग, अडिग और अप्रतिहत साहस, लोक और तंत्र के रिश्ते की शिनाख्त, भाषा के उस आदिम राग को परखने का वैभव जो मनुष्य के गाढ़े समय की सबसे करीब हमसफर होती है आदि अनेक बिंदु हैं, जहाँ केदार जी की कविता हमें सर्वाधिक विश्वसनीय ढंग से आश्वस्त करती है। केदार जी अनेक अर्थों में अपने समकालीनों से अलग थे। उनकी कविता जितनी सहजता से दिल्ली की गहमागहमी, बदलती तस्वीर और सूखती संवेदना की वीरानगी को पकड़ने में सफल रही, उतनी ही सहजता से सुदूर पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के भागड़ नाले की जलमुर्गियों और दलपतपुर की बुढ़िया की खो गई बकरियों के इर्द-गिर्द विचरी। देश-दुनिया के भूगोल में शामिल केवल दिल्ली ही नहीं बल्कि वरुणा और गंगा के दियारे के बनारस और कुशीनगर के वृक्ष की चिंता करती यह कविता कुम्भनदास, त्रिलोचन शास्त्री, राजेन्द्र यादव से बतियाती हुई ज्याँ पाल सार्त्र की समाधि, मुक्तिबोध के सवालों और उदय प्रकाश को भी अपनी दुनिया में समेटती हुई मुकम्मल काव्य आख्यान का सृजन करती रही।

यह केदार जी के काव्य लोक की विशिष्टता थी कि यहाँ काव्य अनुभव कवि कौतुक न होकर सौंदर्य और अभिव्यक्ति के अपरिहार्य अनुभव का हिसा बन गया। तकरीबन पचास साल से हिंदी कविता की दुनिया को अनुपम और अपूर्व काव्यभूमि से संपन्न करने वाले केदार जी सच्ची भारतीय कविता का खाका तय करते नजर आते हैं। केदार जी की कविताओं में अनेक अर्थछवियाँ व्याप्त हैं। कविता की लंबी यात्रा के दौरान कहने और रचने के उनके बहुविध संसार में अनेक बदलाव हुए। चाहे विषयों का

चयन हो, या भाषा की रवानगी या फिर बिंबों का समय सापेक्ष प्रयोग। कहते हैं जो कवि कालजीवी नहीं होता वह कालजयी भी नहीं हो सकता। केदार जी समय में जीते-रचते हुए अपने समय का अतिक्रमण भी करते हैं और इसका उत्स है मनुष्यता की चिंता, भारतीयता की पक्षधरता और विचारधारा की सजगता। इसी अर्थ में वे हिंदी की दुनिया में रहते हुए उसका अतिक्रमण भी करते हैं और भारतीय कविता का विश्वसनीय खाका बनाते हैं। यह अकारण नहीं है कि वे समकालीन हिंदी कविता के उन थोड़े कवियों में शामिल हैं जिनकी कविता की व्याप्ति हिंदीतर पाठकों के बीच बेहद सम्मानजनक और विश्वसनीय रूप में है।

'सृष्टि पर पहरा' अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस संसार में अनेक विशिष्ट अनुभव शामिल हैं, जिनमें कुछ की पहचान अनेक रूपों में संभव है। अनुभव की अंतर्यात्रा, समकालीन राजनीति का काव्य रूपांतरण, लिपि और भाषा की घेरेबंदी को तोड़ती और अपने फलक को विस्तृत करती अनुभव संपदा, खाऊ-पकाऊ और विवेकशून्य राजनीति के समानांतर उठते जनविरोध की संगति का आख्यान, किसानों की आत्महत्या और बदलते लोकतंत्र पर पैनी नजर, सत्ता और साहित्य के रिश्ते की संश्लिष्टता की पहचान जैसे अनेक विषय के साथ घर और प्रेम पर भी विलक्षण काव्य अभिव्यक्तियाँ हैं। कवि के पहले संग्रह 'अभी बिलकुल अभी' और तीसरा सप्तक में शामिल रचनाओं में अनेक गीत भी शामिल थे। बाद के संग्रहों में गीत शामिल नहीं हुए। एक बार फिर उनके काव्यशिल्प में गीत, ग़ज़ल जैसे रूप शामिल हुए हैं। बिंबों की लगातार विस्तृत होती दुनिया के समकालीन सरोकारों की ताजगी संग्रह को विशिष्ट बनाती है।

सवाल किया जा सकता है कि कवि की लंबी काव्ययात्रा का उत्स या प्राणतत्त्व क्या है? दरअसल कवि की परिवेश सजग आँखों की बेचैनी उसकी कविता को पुनर्नवा बनाती है, और उनसे दीवानगी की हद तक किया जाने वाला प्यार धारोष्ण काव्यानुभव को सिरजता है। बकौल कवि :

हिंदी मेरा देश है
भोजपुरी मेरा घर
घर से निकलता हूँ
तो चला जाता हूँ देश में
देश से छुट्टी मिलती है
तो लौट आता हूँ घर

इस आवाजाही में
कई बार घर में चला आता है देश
देश में कई बार
छूट जाता है घर

मैं दोनों को प्यार करता हूँ
और देखिए न मेरी मुश्किल
पिछले साठ बरसों से
दोनों में दोनों को
खोज रहा हूँ।

जिसे घर के प्यार का ककहरा मालूम है, वही पड़ोस, गाँव, मुहल्ले, कस्बे और देश से जिजीविषा की हद तक प्यार भी कर सकता है। केदार जी सौंदर्य के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस सौंदर्य का आधारतत्त्व है अधूरी दुनिया, ख्वाब या यूँ कहें अधूरेपन को पूरा करने की बचैनी। कहना न

होगा इस बेचैनी का सिरा नष्ट होती दुनिया को बचाने की ललक और प्रतिबद्धता से जुड़ी है। जो काव्य विवेक ईमानदार होता है, वह जितनी बहिर्यात्रा करता है, उतनी ही अंतर्यात्रा भी। यह अकारण नहीं है कि भक्त कवियों से आधुनिक कवियों तक अंतर्यात्रा के अनेक रूपों से हिंदी संसार परिचित हुआ। केदार जी के इस संग्रह में अंतर्यात्रा के विविध रूप शामिल हैं। वह अंतर्यात्रा से शक्ति पाता है तो नितांत निजी क्षणों में खुद को परास्त भी महसूस करता है। इस संग्रह की एक कविता है–'पत्नी की अट्ठाइसवीं पुण्यतिथि पर'। अत्यंतगता पत्नी के जाने के दुःख के सामने कवि खुद को बेहद निरुपाय पाता है। पत्नी का जाना कवि संसार को निचाट उदासी और खालीपन से भर देता है

पहले वह गई
फिर बारी-बारी चले गए
बहुत से दिन
और ढेर सारे पक्षी
और जाने कितनी भाषाएँ
कितने जलस्रोत चले गए दुनिया से
जब वह गई।

पर जीवन तो चलता ही रहता है, कवि ने अपने खालीपन को कवि की तरह भरा। बकौल कवि यह शब्दों का संसार था और किताबों की दुनिया थी जिससे खालीपन का सामना हुआ

और जो बच गया शून्य
उसमें रहने आ गए
झुंड के झुंड शब्द
और किताबों के रेवड़
और बर्र की तरह लिखी-अनलिखी कविताओं के छत्ते

और इस तरह शामें
होती रहीं सुबहें
सुबहें धीरे-धीरे शाम।

कवि के इस खालीपन में कविताएँ, देश-विदेश की यात्राएँ। पुरस्कार और प्रतिष्ठा के न जाने कौन-कौन से आयाम आए। पर यह जो दुःख है, वह इन दुनियावी समृद्धियों के सामने तनकर खड़ा होता रहा और कवि के कान में स्मृतियों ने बुदबुदाकर फिर कवि को निरुत्तर कर दिया। कवि की अंतर्यात्रा का यह दृश्य विलक्षण है

और जब अलंकृत होकर
उतर रहा था नीचे
तो लगा
कोई कान में बुदबुदा रहा है
कवि जी,
यह कैसा मंच है
शब्दों का कैसा उत्सव
जहाँ प्यार की एक ही तुक है
पुरस्कार!

कविता पढ़ते हुए हिंदी कविता के अनेक अविस्मरणीय दाम्पत्य प्रसंगों की यादें ताजा हो जाती

हैं। तुलसीदास की रत्नावली, नंददास की रूपमंजरी और निराला की मनोहारा देवी, मुक्तिबोध की शांता का प्रसंग बरबस ही इस कविता को पढ़ते हुए याद आता है। क्या तुलसी के दुःख, नंददास की पीड़ा और निराला-मुक्तिबोध के संताप में प्रेम से विस्थापित होने के दर्द ने जीवन के नजरिए को एक नया आयाम नहीं दे दिया? जिसे दीवानगी की हद तक चाहा जाए और उसका अचानक जाना हो जाए, तब हमारे कलात्मक संसार में दुःख धीमे-धीमे बजता रहता है। यह संभव है कि इस सवाल का सामना पाठक अपने-अपने तरीके से करे। संग्रह की एक और कविता अंतर्यात्रा के लिहाज से उल्लेखनीय है–'घर में प्रवास'। व्यावहारिक दुनिया के हिसाबी-किताबी तकाजों से अलग यह अंतर्यात्रा छूट गई दुनिया को अलग तरह से देखती है। समय ने कवि की दुनिया पर अपना असर डाला और उसे अपने पैतृक घर से दूर जाना पड़ा।कवि ने उस वीरान पड़े घर को नए बाशिंदों-कबूतरों को सौंप दिया है। अब जब कवि अपने उस घर में लौटता है तो वहाँ एक अलग दुनिया रची-बसी नजर आती है। उसका संवेदनशील मन उस दुनिया के सिलसिले में बेहद सजग है। इस कविता के दो हिस्से हैं। कविता के पहले हिस्से में कबूतरों के साथ कवि का तादात्मीकरण देखने लायक है :

कभी जाता हूँ गाँव
तो उनकी असुविधा का ध्यान कर
रह लेता हूँ किसी पड़ोसी के घर
सोचता हूँ
कहीं ऐसा न हो कोई युग नद्ध जोड़ा
मेरी आहट से छिटक जाए
या क्या पता किसी मादा ने
अभी-अभी दिया हो पहला अंडा
या फिर कोई बूढ़ा कबूतर
जीवन-संग्राम में
छूट गया हो अकेला!

कविता के दूसरे हिस्से में कवि ने कबूतरों के साथ के गए अपने इस अनुबंध को भूल जाने का जिक्र किया है। जब वह अपने पुश्तैनी घर में गया, तब यह एक साक्षात्कार था, आधुनिक का आदिम के साथ। यह साक्षात्कार कवि की अंतर्यात्रा का विस्तार करता हुआ, पुरखों की दुनिया में विचरता है। आदिम राग और आदमी के बीच अजनबियत को हस्तक्षेप की तरह खारिज करते कबूतरों के साथ की गई यह यात्रा कवि के निजी संसार का काव्यात्मक आख्यान करती है

यह एक आधुनिक का
आदिम प्रवास था
अपने ही घर में

कोई हफ्ता भर उनके आतिथ्य में रहकर
जब मैं ले रहा था विदा
'कबूतरों ने कोई ग़ज़ल गुनगुनाई'
शायद पितरों के समय की
और मैं समझ न सका
उनकी आवाज में
कितना गम था
कितनी खुशी!

ध्यान देने की बात है कि पुरखों की दुनिया में कबूतरों के साथ विचरते कवि को शमशेर बहादुर सिंह की याद भी आती है, यानी इस निजी यात्रा का एक सिरा हिंदी कविता की जातीय परपरा से भी संवाद करता है। निजी संसार पर एक अन्य बेहतरीन कविता है–'जैसे दिया सिराया जाता है'। यह माँ पर लिखी गई है। कवि का गाँव गंगा के करीब था। माँ की अवस्था और कवि की व्यस्तता के बीच माँ का बार-बार यह कहना कि गंगा नहा दो, और फिर इस इच्छा के साथ माँ का दुनिया से जाना। कवि इस प्रसंग को काव्यात्मक आयाम देते हुए कहता है कि, 'मैंने उसे हथेलियों पर उठाया/और बहा दिया लहरों पर'। अब उन्हें चिंता सताती है कि माँ का क्या होगा, उन्हें भोजपुरी के सिवा कोई और भाषा तो आती ही नहीं। विश्व नागरिक में बदल चुके कवि का यह नितांत निजी संसार है, और माँ-बेटे का वह संबंध जहाँ बेटे की चिंता करती हुई माँ अब खुद बेटे की चिंता का विषय बन गई है। ऐसे में उसे माँ की हमसफर भागीरथी की याद आती है, और वह भागीरथी से एक अत्यंत स्नेहिल अनुरोध करता है, बकौल कवि :

तो मैंने भागीरथी से कहा
माँ,
माँ का खयाल रखना
उसे सिर्फ भोजपुरी आती है।

अंतर्यात्रा के लिहाज से ये कविताएँ बेहद महत्त्वपूर्ण हैं। देश-दुनिया की चिंताओं में रचे- बसे कवियों का पारिवारिकता से भरा निजी संसार बहुत कम प्रकट हो पाता है। केदार जी की काव्यदृष्टि इन पहलुओं में बखूबी विचरती है।

अब यह देखने-परखने की कोशिश की जाए कि केदारनाथ सिंह हिंदी की जातीय परंपरा और विश्व कविता, साथ ही जीवन यात्रा में शामिल रचनात्मक संसार से कैसे और किन रूपों में जुड़ते हैं। कहते हैं, नागरिकता की मुकम्मल दुनिया बिना जातीय परंपरा और विश्वदृष्टि के नहीं बनती। पर यह बात उनकी समझ में नहीं आएगी, जिनकी दुनिया का सिरा तथाकथित देशभक्ति के शोर गुल के जीवन-मरण में डूबी रहती है। प्रसंगवश इसी वर्ष केदार जी जब अक्टूबर महीने में इलाहाबाद आए, और हिंदी संसार सहिष्णुता-असहिष्णुता के मुठभेड़ पर उनकी राय जानना चाहा, तब उन्होंने कवि-कर्म की पक्षधरता का अत्यंत सटीक आख्यान किया और कहा हिंदी संसार को एक लंबी लड़ाई के लिए तैयार हो जाना चाहिए। कहना न होगा उम्र के उत्तरार्द्ध में पहुंचे एक कवि का यह समय हस्तक्षेप अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इस प्रसंग के निहितार्थ को वही समझ सकता है जो हिंदी की जातीय परंपरा और विश्वदृष्टि से वाकिफ हो। आइए ऐसी कुछ कविताओं को देखें। अपने समय के सबसे बेचैन और प्रतिबद्ध कवि मुक्तिबोध ने एक बिंब का प्रयोग किया था ब्रह्मराक्षस के रूप में। कहते हैं यह बिंब देश काल की सीमा का अतिक्रमण कर युगबिंब में रूपांतरित हो गया। केदारनाथ सिंह इस बिंब से अपने अंदाज में तादात्मीकरण करते हैं। पुस्तक और उसमें शामिल 'सृष्टि पर पहरा' शीर्षक कविता को इस लिहाज से देख सकते हैं–

जड़ों की डगमग खडाऊँ पहने
वह सामने खड़ा था
सिवान का प्रहरी
जैसे मुक्तिबोध का ब्रह्मराक्षस
एक सूखता हुआ लंबा झरनाठ वृक्ष
जिसके शीर्ष पर हिल रहे थे
तीन-चार पत्ते।

किसी गाँव में सिवान का कितना महत्त्व होता है, इसे समझने के लिए भारतीयता की अवधारणा में गाँव की मौजूदगी को समझना होगा। कवि का डीह बाबा या ब्रह्म बाबा की जगह ब्रह्मराक्षस में उम्मीद ढूँढ़ना बेहद अर्थपूर्ण है। सपाट प्रार्थना शिल्प की जगह संशय और प्रशानाकुलता में उम्मीद की रोशनी :

कितना भव्य था
एक सूखते हुए वृक्ष की फुनगी पर
महज तीन-चार पत्तों का हिलना।

उस विकट
सुखाड़ में
सृष्टि पर पहरा दे रहे थे
तीन-चार पत्ते।

संशय का सिरा संवाद से भी जुड़ता है और फिर कवि को अपने काव्यगुरु त्रिलोचन और मित्र कथा लेखक राजेन्द्र यादव की याद आती है, कविता का शीर्षक है–'हलंत का क्या करें।'

इस याद के संसार की अंतर्धारा का एक पक्ष है आत्मीयता। कवि को कहीं जाने से पहले कुछ बेहद जरूरी काम करने हैं

मैं वहीं हूँ
और जिंदा हूँ
फिर लिखनी एक चिट्ठी
कविवर त्रिलोचन को
(पता नहीं अब उनका पता क्या है!)
कि शास्त्री जी,
हिंदी में हलंत का क्या करें?
और हाँ–भेजना है एक सुझाव
राजेन्द्र यादव को
कि बंधुवर,
कैसा रहे हो जाए अगला सेमिनार
कथा में फैंटेसी
और आपके पाइप से निकलते धुएँ के संबंध पर।

इस लिहाज से संग्रह में शामिल कविता 'कवि देवेन्द्र कुमार' भी देखी जा सकती है। कवि की अपनी परंपरा देश के भूगोल का अतिक्रमण भी करती है, औरवह पहुँच जाता है ज्याँ पाल सार्त्र की कब्र पर। वह सार्त्र जिसे अनगिनत लोगों का अथाह प्यार मिला। इस प्यार को सुंदर बिंबों के माध्यम से विलक्षण सामर्थ्य में रूपांतरित कर देता है। सार्त्र की कब्र पर मेट्रो की टिकट रखी है, जिसके बारे में गाइड का कहना है, कि किसी पुरानी मित्र ने इस उम्मीद में रख दिया है कि जब सार्त्र गहरी नींद से उठेंगे तब आ जाएँगे। अस्तित्व की निरंतरता अपने अंदाज में कवि को रोमांचित कर देती है :

मुझे लगा
अस्तित्व का यह यह भी रंग है
न होने के बाद
होते यदि सार्त्र

क्या कहते इस पर
सोचता हुआ होटल लौट रहा था मैं।

यह विलक्षण है कि कवि के भूगोल और कालबोध में सार्त्र भी हैं और कुम्भनदास भी। एक बेहद सुंदर कविता 'मंच और मचान' है। कविता में रामाभार स्तूप कुशीनगर के उस वृक्ष का जिक्र है, जिस पर एक श्रद्धालु चीनी बौद्ध ने अपना बसेरा बना लिया था। प्रधानमंत्री की यात्रा के मद्देनज़र उस वृक्ष को काटने का निर्णय लिया गया। बौद्ध भिक्षु ने उतरने से साफ मना कर दिया। उसने चीनी गमक वाली हिंदी में अपना सत्याग्रह जारी रखा। पर शासन के सामने उसकी एक न चली। केदार जी ने कविता कविता के आरम्भ में यह उल्लेख किया है कि कवि कथाकार उदय प्रकाश के लिए कविता लिखी गई है। यानी कवि ने हिंदी की जातीय परंपरा का आख्यान अनेक रूपों में किया है। जन-जन के प्रतिनिधि और बीच में आया तंत्र। कवि का बिंब देखने लायक है :

प्रधानमंत्री!
खिल गए लोग
जैसे कुछ मिल गया हो सुबह-सुबह
पर कैसी विडंबना
कि वे जो लोग थे
सिर्फ नेहरू को जानते थे
प्रधानमंत्री को नहीं!

केदार जी ने मिलने और सुबह का जिक्र कर आजादी और जनता के भावात्मक जुड़ाव का सुंदर बिंब खींचा है। इस कविता में एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कवि ने घर की निजता और सत्ता के द्वंद्व को अपने अंदाज में रेखांकित किया है, बकौल कवि :

तब से कितना समय बीता
मैंने कितने शहर नापे
कितने घर बदले
और हैरान हूँ मुझे लग गया इतना समय
इस सच तक पहुँचने में
कि उस तरह देखो
तो हुक्म कोई नहीं
पर घर जहाँ भी है
उसी तरह टँगा है।

इस संग्रह में असाधारण रूप से सत्ता तंत्र पर अनेक काव्य अभिव्यक्तियाँ शामिल हैं। केदारनाथ सिंह ने बेहद बेबाकी और संवेदनशीलता इसके विविध संश्लिष्ट पहलुओं से संग्रह के काव्यलोक को सिरजा है। कोई भी सत्ता स्वाधीन चेतना की तपिश को बर्दाश्त नहीं करती। ध्यान देने की बात है कि समय से कवि का रिश्ता क्या है! यहीं कवि अपने अन्य समकालीनों से अलग नजर आते हैं। कोई कविता यदि इक्कीसवीं सदी के पहले और दूसरे दशक में लिखी जा रही है, तब कवि समय की परिधि में नव उदारवाद, नक्सलवाद, जनविमुख सरकारी तंत्र, फासीवादी मंसूबों का दुनिया में तेजी से विस्तार, सांप्रदायिक उन्माद किस रूप में आता है, यह देखना जरूरी हो जाता है। ऐसा संभव नहीं है कि किसी बड़े कवि में अपने समय की पीड़ा और आकांक्षा की काव्य अभिव्यक्तियाँ न हों। सवाल यह है कि केदार जी कैसे इन स्थितियों से रूबरू होते हैं। यह ध्यातव्य है कि अपने अन्य समकालीनों जैसे अशोक वाजपेयी से वे इन संदर्भों में बिलकुल अलग नजर आते हैं। आइए इन संदर्भों को और

गहराई से देखने का प्रयास किया जाए। कुम्भनदास की काव्य पंक्ति 'आवत जात पनहिया टूटी बिसर गयो हरिनाम' हिंदी संसार में मुहावरे के रूप में तब्दील हो चुकी है। सत्ता और कवि के संश्लिष्ट अनुभवों को बेबाकी से रखती ये पंक्तियाँ सैकड़ों वर्षों से हिंदी संसार का कंठहार बनी हुई है। केदार जी की कविता 'कवि कुम्भनदास के प्रति' कुम्भनदास के बहाने अपने समय को काव्य आस्वाद में रूपांतरित करती है :

संतकवि
खड़ा हूँ आपकी समाधि के सामने
और मेरे दिमाग में गूँज रही है
आपकी वह पंक्ति
'संतान को कहाँ सीकरी सों काम'
सदियों पुरानी एक छोटी-सी पंक्ति
और उसमें इतना ताप
कि लगभग पाँच सौ वर्षों से हिला रही है हिंदी को।

अहंकार और दर्प में डूबी-बौराई सत्ता और प्रतिपक्ष में खड़ी सत्याग्रह करती कविता की विरासत। 'लगभग पाँच सौ वर्षों से हिला रही है हिंदी को' काव्य पंक्ति में जैसे हिंदी अपनी विरासत ढूँढ़ रही हो। कवियों ने सत्याग्रह की इस परंपरा को अपने-अपने समय में अपने-अपने तरीकों से पुरनूर विचारों और असहमतियों के विवेक से भरा। इस कविता के तीन शेड हैं—हिंदी की विरासत, समय की विवशता और कवि का पक्ष। जीना तो इसी संसार में है, जहाँ जीवन जगत् की बाध्यताओं के कदम सत्ता के राजमार्ग से होकर गुजरते हैं। अब सीकरी का तिलस्म पहले से कहीं ज्यादा गहरा हो चुका है। बकौल कवि, 'जाना होगा दिल्ली ही/और दिल्ली आज की सीकरी है संतप्रवर/तब तो एक थी/अब एक के अंदर एक/जाने कितनी सीकरियाँ हैं!' कविता अपना पक्ष चुनती है—'कविता और सीकरी के बीच/कि सदियाँ गुजर गईं/और दोनों में आज तक पटी ही नहीं!' जब आवाज के सारे मंसूबे पराजित हो जाते हैं तब भी एक उम्मीद बाकी रहती है। वह आवाज कविता की होती है। यह अकारण नहीं है कि 'निराला की आवाज' कविता में केदार जी को कविकर्म विलक्षण रूप में याद आता है :

शहर बनारस का वह पुराना स्कूल
मंच नहीं था
श्रोता नहीं थे
कोई शब्द नहीं था
सिर्फ एक
'पत्रोत्कंठित' पेड़ वहाँ खड़ा था
और निराला बोल रहे थे।

सत्ता और कविता के रिश्ते पर एक मार्मिक कविता है—'घास'। तंत्र अपनी परिधि से लगातार जन को खदेड़ रहा है। पर जन तो जन है, वह तंत्र के हर किए-धरे पर पानी फेर देता है। तंत्र नई-नई युक्तियाँ गढ़ता है तो जन प्रतिरोध के नए-नए तेवरों से अपने संपर्क पुख्ता करता है। कविता में आह्वान है कि जन के प्रतीक घास के पक्ष में विचार रखा जाए। सभ्यता की नई इबारतों ने आम आदमी को बेदखल करने का अभियान चलाया है। कवि जानता है कि यह आम आदमी विस्थापित होने के बावजूद उन जगहों पर अपना अक्स ढूँढ़ता है, जहाँ से वह खदेड़ा गया है। घास के बिंब से उसे रूपायित करता कवि कहता है :

घास परेशान है इन दिनों

आने दो उसे
अगर आती है वह
दुनिया के तमाम शहरों से खदेड़ी हुई
जिप्सी है वह
तुम्हारे शहर की धूल में अपना खोया हुआ नाम
और पता खोजती हुई।

कविता अपना पक्ष चुनती है, और वह जोखिम उठाती हुई जन के पक्ष में खडी होती है। सत्ता और प्रतिपक्ष के द्वंद्व में अमरता की आकांक्षा लिए ज्ञान के विभिन्न अनुशासनों की देशकाल निरपेक्ष गति से केदार जी असहमत हैं। दार्शनिक, कवि, प्रोफेसर आदि से यह उम्मीद करते हैं कि वे अपने अस्तित्व को जन से आबद्ध करें। सत्तावादी समूह शायरी, कविता, दर्शन, शिक्षा आदि का इस्तेमाल अपने हक में करता है। पारंपरिक वर्चस्व के आतंक तले विकसते अवसरवादी गठजोड़ों से कवि सावधान करते हुए, प्रस्तावित करता है कि घास पर अखंड बहस हो। यानी जन कभी ओझल न हो तंत्र से। कवि की प्रतिबद्धता का आलम यह है कि यह बहस न भी हो, तब भी वे अपना पक्ष निर्विवाद रखना चाहता है :

शुरुआत के तौर पर मैं घोषित करता हूँ
कि अगले चुनाव में
मैं घास के पक्ष में
मतदान करूँगा।

भारत में किसान जीवन लगातार दुष्कर होता जा रहा है। उदारीकरण की आँधी में सत्ता ने सबसे ज्यादा किसानों को बेदखल किया है। भारत के राष्ट्रीय अपराध ब्यूरो के आँकड़ों के अनुसार 1995 से 2014 के बीच साढ़े तीन लाख से भी ज्यादा किसानों ने आत्महत्या की है। गौरतलब यह है किसान इन संदर्भों में खुद को कहाँ खड़ा पाता है? एक मध्यवर्गीय किसान के बेटे के रूप में कवि की दुनिया में किसानी जीवन की अनेक अर्थछवियाँ व्याप्त हैं। संग्रह में कहीं किसान हताश है तो कहीं प्रतिरोध की अलख जगाता नजर आता है। 'फसल' कविता का किसान विस्थापन से हतप्रभ है–'उधर हुआ यह/कि ज्यों ही पहुँचा मरखहिया मोड़/कहीं पीछे से एक तेज भोंपू की आवाज आई/और कहते हैं क्योंकि देखा किसी ने नहीं/उसे रौंदती चली गई'। 'देखा किसी ने नहीं' उस निर्लज्जता की याद दिलाता है जहाँ व्यवस्थाओं द्वारा की गई हत्या को आँकड़ों की बाजीगरी में उलझाकर कुंद कर दिया जाता है। पर इस विकट समय में रास्ता किधर है? केदार जी गहरे जीवन राग के कवि हैं। वह जीवनराग जो देशकाल निरपेक्ष अमूर्त की कुलाँचे नहीं भरता, बल्कि अपने समय की बेचैनियों, संघर्षों और सपनों से बावस्ता होता है। इस लिहाज से संग्रह की किसान जीवन पर ही आधारित कविता 'एक ठेठ किसान के सुख' कविता देखी जा सकती है। आतंक और सौंदर्य को एक ही बिंदु पर सिरजना कवि के काव्यलोक का हिस्सा रहा है, पाठकों को 'बाघ' संग्रह याद है। आइए यह देखा जाए कि आलोच्य कविता में काव्य आस्वाद का रूप इस लिहाज से कैसा है? आए दिन अखबार की सुर्खियों में भूमि अधिग्रहण का फरमान और जीवन-मरण के लिए संघर्ष करते किसानों की खबरें आती हैं। इस कविता में ऐसे ही एक किसान का जिक्र है जिसकी जमीन के अधिग्रहण का फरमान जारी कर करारनामे पर हस्ताक्षर के लिए कचहरी बुलाया गया है। पूरी कविता की बुनावट शानदार है। जब किसान सुस्त और निढाल था, तभी चमकती आँखों वाला साँप दिखाई पड़ा। जोखिम में उसे सौंदर्य दिखा। वह अवाक् होकर उस सौंदर्य को देखता रह गया। जब वह चौके में गया तब वहाँ दिन की थाली में रात की लिट्टी के साथ दमकती हुई हरी मिर्च दिखाई दी और उसे लगा जीवन में जैसे फिर से स्वाद आ गया हो। महत्त्वपूर्ण यह है कि जिस समाज में दैवीय चमत्कार में ही हर मर्ज की दवा ढूँढ़ी जाती हो, उस समाज में दैनिक जीवन के जद्दोजहद के

बीच उम्मीद का नजर आना कवि के नजरिए का साक्ष्य है। कविता का समापन देखिए :

वह कचहरी गया
वहाँ उसके सामने रखा गया
एक सादा कागज
कहा गया–'यहाँ...यहाँ...
एक दस्तखत करो'

उसने इनकार किया
और उसे लगा
वह दस गुना
बीस गुना
सौ गुना और जिंदा हो गया!

विकास के समकालीन फलसफे के सबसे आसान शिकार आदिवासी हैं। भूमंडलीकरण ने उनपर जुल्मों में खासी बढ़ोत्तरी की। उपभोक्तावाद और विश्व बाजार की अंधी लिप्साओं के बीच आदिवासी। विकास और विस्थापन का अंतहीन रास्ता। जहाँ विकास की गाथा हमेशा प्रभुवर्ग और उस वृत्त में शामिल सिपहसलारों के लिए हैं तो, उसी तरह विस्थापन की अंधी सुरंग में हमेशा धकेले जाने के लिए भी विवश समूह भी पूर्वनियोजित यानी आदिवासी और किसान हैं। इस संग्रह में विकास के इस चमकते फलसफे की मुखालफत करते आदिवासियों पर भी रचना है। एक कविता का शीर्षक है–'बाजार में आदिवासी'। कविदृष्टि की अचूक पहुँच देखिए, केदार जी कहते हैं :

भरे बाजार में
वह तीर की तरह आया
और सारी चीजों पर
एक तेज हिकारत की नजर फेंकता हुआ
बिक्री और खरीद के बीच के
पतले सूराख से
गेहूँअन की तरह अदृश्य हो गया
एक सुच्चा
खरा
ठनकता हुआ जिस्म।

कमाल यह है कि कविता केवल इस दृश्य बिंब की रचना कर खामोश नहीं हो जाती है। सभ्यता विकास की प्रचलित गाथा के पास इसे समझने और प्रकट करने के लिए किसी तरीके काना होना भयानक है। पर कवि की प्रतिबद्धता सजग है। उन्हें मालूम है कविता को किसके साथ खडा होना है, बकौल कवि, 'कहते हैं वह ठनक अबूझमाड़ में/रात-बिरात/अक्सर सुनाई पड़ती है/मिला कोई गायक/तो एक दिन पूछूँगा/संगीत की भाषा में/क्या कहते हैं इस ठनक को?' कविता के अपने पक्ष चुनने की यह यात्रा अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय है। कवि हिंदी कविता की जनपक्षधरता के विस्तार में अपनी भूमिका तय करते हैं। खतरनाक दौर होना जितना बुरा है, उससे कहीं ज्यादा बुरा है खतरनाक दौर रहते हुए चुप रहना। चुप्पी होना किसी समाज के दम तोड़ने का प्रतीक है। किसान-आदिवासी पर लिखी कविताओं का सिरा उस चुप्पी को बेनकाब करेने से जुड़ता है, जिसकी परिणति किसानों, मजदूरों और आदिवासियों के मौजूदा मंजर से है। केदार जी न सिर्फ इस चुप्पी को ताड़ते हैं, बल्कि इस चुप्पी को तोड़ते हरसंभव

प्रयत्न को जिंदा होने का सबूत मानते हैं—'मैंने एक बुजुर्ग से सुना था/कि चुप्पियाँ जब भी बढ़ती हैं/अँधेरे में नदी की तरह/चुप हो जाता है एक पूरा समाज/एक जीता-जागता राष्ट्र/भूल जाता है अपनी भाषा/और एक फूल के खिलने से भी/दरक जाते हैं पहाड़/ऐसे में मित्रो,/अगर बोलता है एक कुत्ता/बोलने दे उसे/वह वहाँ बोल रहा है/जहाँ कोई नहीं बोल रहा।' केदार जी की बिंब धर्मिता बेहद सटीक है, उदाहरण के लिए इस कविता में फूल के खिलने और पहाड़ के दरकने का बिंब या चुप्पी में कुत्ते के भौंकने का बिंब। फूल का खिलना यथास्थितिवाद के पहाड़ को दरका देता है, उसी तरह कुत्ता समाज के प्रहरी के रूप में याद तो किया ही जाता है, भारतीय परंपरा में वह धर्म का प्रतीक भी है। एक कविता जिसका शीर्षक ही है 'कविता', उसमें भी केदार जी संघर्षरत आदिवासी युवाओं का बिंब रचते हैं। उनका विश्वास है कि जंगलों में लड़ने वाले आदिवासी युवाओं को सबसे विश्वसनीय साथ कविता का ही मिलता है, 'पता लगा लो जो मारे जाते हैं जंगलों में/उन युवा होंठों पर/अकसर होती है कोई न कोई कविता।...जाने कैसी बनैली प्रजाति की लाटर है/किसी राष्ट्रीय उद्यान में/खिलती ही नहीं।'

अब भाषा और उसकी संस्कृति पर आधारित कुछ कविताओं को देखते है। संग्रह की एक बेहद सुंदर कविता है—हिंदी। बीती सदी के दूसरे-तीसरे दशक से हिंदी के विकास को संस्कृत से अधिकाधिक संबद्ध करने और जनपदीय जड़ों से अलग करने का जो सिलसिला चला, वह बदस्तूर आजादी के बाद भी जारी रहा। फिर हिंदी सरकारी संस्थाओं के खाने-पकाने का साधन बन गई। राजभाषा बनने के बाद तोवह जनआकांक्षाओं से और दूर होती गई। केदार जी ने हिंदी के विभिन्न तेवरों को प्रकट करने के लिए अनेक दृश्य खंडों को कविता की परिधि में शामिल किया है। कवि हिंदी के आभिजात्यवादी रूप और जनपक्षर हिंदी के द्वंद्व की भूमि पर काव्यभूमि सिरजते हैं। कवि के काव्य गुरु त्रिलोचन ने कहा था, 'हिंदी की कविता उनकी कविता है, जिनकी आँखों को आराम नहीं था'। केदार जी की चिंता यह है कि हिंदी की जनपक्षधरता पर लगातार हमले हो रहे हैं। वह हिंदी कवि के दुख की संघाती है। कवि को इस बात का सुकून है कि जो हिंदी जनपक्षधर है, वह सरकारी षड्यंत्रों में शामिल नहीं है। उस हिंदी की जनपक्षधरता को कवि ने मारक बिंबों में प्रस्तुत किया है, 'कहती वह कुछ नहीं/पर बिना कहे भी जानती है मेरी जिह्वा/कि उसकी पीठ पर भूली हुई चोटों के/कितने निशान हैं/कि आती नहीं उसकी कई क्रियाओं को ध्रात-रात भर/दुखते हैं अक्सर कई विशेषण।'

जिस भाषा ने जन के सपने-सरोकार सृजोए उसे न सिर्फ शुद्धतावाद की परिधि में जकड़ा गया बल्कि उसे लोक के खेत-खलिहानों, पगडंडियों से काटने की साजिशें भी हुईं। उस हिंदी को अब्दुर्रहमान, अमीर खुसरो, विद्यापति जैसे लोगों की प्राणवायु से विहीन करने का सिलसिला भी जारी है। यानी उसके स्रोतों (अरबी-तुर्की, बाँग्ला, तेलुगू आदि) से ही काटने का कुत्सित खेल। कवि की सजग आँखें कहती हैं:

मेरा अनुरोध है
भरे चौराहे पर करबद्ध अनुरोध
कि राज नहीं भाषा
भाषा-भाषा सिर्फ भाषा रहने दो मेरी भाषा को
इसमें भरा है पास-पड़ोस
और दूर-दराज की इतनी ध्वनियों का
बूँद-बूँद अर्क
कि मैं जब भी उसे बोलता हूँ
तो जैसे कहीं गहरे
अरबी-तुर्की बाँग्ला तेलुगू

यहाँ तक कि एक पत्ती के हिलने की आवाज भी
मैं सब बोलता हूँ जरा-जरा
जब बोलता हूँ हिंदी।

भाषा की जीवंतता को बचाए रखने में विजातीय भाषा बरतने वालों की भी भूमिका होती है। इसे वही समझ सकता है जो भाषा के प्रवाह को जानता है। हिंदी पर संग्रह की कविता 'मंच और मचान' में भी एक दृश्य बिंब शामिल है। कविता में एक स्थान पर चीनी भिक्खु के बोलने पर कवि की टिप्पणी है:

'तो शुनो' भिक्खु अपनी चीनी गमक वाली
हिंदी में बोला
'चाये काट डालो मुझी को
उतारूँगा नईं
ये मेरा घर है'।

यह हिंदी का एक अलग वैभव है, जिसकी आत्मा संघर्ष को वहन करने में सोलहो आने समर्थ है। भाषा पर एक टिप्पणी 'शोध' कविता में भी है, जहाँ केदार जी एक साथ भाषा की भूमिका और अपनी प्रतिबद्धता दोनों पर टिप्पणी करते हैं–'और मुझे रुकना होगा वहीं/उस भाषा का अध्ययन करने के लिए/जो मछलियाँ बोलती हैं/बहते हुए जल से/और वह विलाप जो गूँजता है उनकी आँखों की/चमक में और वह तकनीक/जो बाजार करता है इस्तेमाल/उनके जल से/जाल तक पहुँचने की यात्रा में।'

केदार जी की कविता में सौंदर्य और आतंक को एक ही बिंदु पर सिरज कर जैसे अद्भुत काव्यलोक का सृजन किया जाता है, वैसे ही उम्मीद की लौ भी उनकी कविता में सदैव जलती रहती है। उनके सभी संग्रहों में उम्मीद का यह अलाव अलग-अलग रूपों में नजर आता है। इस संग्रह में भी उम्मीद अलग- अलग रूपों में मौजूद है। प्रसंगवश संग्रह के शीर्षक से एक बेहतरीन कविता यानी 'सृष्टि पर पहरा' की कुछ काव्यपंक्तियाँ देखी जा सकती हैं। हाहाकार के उन्मत्त शोर के बीच उम्मीद का लहराता परचम, बकौल केदार जी :

कितना भव्य था
एक सूखते हुए वृक्ष की फुनगी पर
महज तीन-चार पत्तों का हिलना

उस विकट सुखाड़ में
सृष्टि पर पहरा दे रहे थे
तीन-चार पत्ते।

'सृष्टि पर पहरा' केदार जी की काव्ययात्रा की श्रेष्ठतम उपलब्धि के रूप में परिगणित की जा सकती है। सभ्यता समीक्षा करती उनकी काव्ययात्रा हमें आशावान बने रहने की ताबीज देकर हमसे विदा हुई। वह ताबीज जो घने अँधियारे में भी भविष्यदृष्टि का सपना बुनती है।